Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2019 = 6.380, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, SEPT-OCT, 2020, VOL- 8/61

न्याय दर्शन : न्याय दर्शन में शब्द प्रमाण का महत्व

श्रीमती सविता निर्वाण
शोधार्थी महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर, (क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, अजमेर)

Abstract

सम्पूर्ण संसार मे प्रत्येक समाज की कुछ अपनी मान्यताएँ होती है जीवन और जगत के आंतरिक अन्वेषण की प्रवृति भारतीय ऋषियों में आरम्भ से ही उदभूत हो गयी थी। अतः तत्व चिन्तन से सम्बन्धित अनेक शास्त्रों का प्रणयन इस देश मे हुआ। भारतीय षड़दर्शन अपनी इन्हीं आन्तरिक उपलब्धियों के कारण प्राचीन काल से ही विश्व भर मे प्रसिद्ध रहे है। भारतीय दर्शन में जहाँ तत्व मीमांसा का प्राधन्य है वही तत्व के अवगम की प्रक्रियाओं का सुक्ष्म एवं वैज्ञानिक निर्धारण भी उनकी अपनी देन है। न्याय की यह तर्क पद्धति जहाँ न्याय शास्त्र की उपलब्धियों का आधार है वही यह अन्य शास्त्रों को भी आन्तरिक आधार प्रदान करती है। चिन्तन की प्रक्रिया को सुस्पष्ट करना इस न्याय विद्या का सर्वोपरी कार्य है। इसलिए इसकी व्यापकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। न्याय दर्शन प्रमाणों पर अत्यधिक बल देता है। इसमें मुख्यतः चार प्रमाण माने गए है, प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान

चारों प्रमाणों की अपनी–अपनी महत्ता है। इस लेख में हम शब्द प्रमाण के स्वरुप एवं महत्व पर चर्चा करेंगे।

सूचक शब्द *– न्याय शास्त्र, प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान*

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

प्रस्तावना :–

न्याय दर्शन मे शब्द प्रमाण का महत्व

ज्ञान के क्षेत्र में परम्पराओं का भी एक अलग ही महत्व है तथा परम्पराओं का वाहक 'शब्द' ही है। यह अन्य बात है कि शब्द के माध्यम से प्रवर्तित ज्ञान राशि अलिखित रुप में ही एक पीढी से दूसरी पीढ़ी को मिलती रही। अतः शब्द के इतिहास तथा शब्द प्रमाण की समस्या के सन्दर्भ मे भी यदि हमारा ध्यान वेदों की ओर जाता है, तो इसमें कोई असंगति नहीं है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'शब्द' ध्वनि का पर्याय है। जन सामान्य की दृष्टि से शब्द एवं पद मे कोई भेद नहीं है। ज्ञान के साधनों के प्रसंग मे 'शब्द' को एक प्रमाण माना गया है और यहाँ हम शब्द के इसी पक्ष पर चर्चा करेगें।

शब्द प्रमाण वह कथन है, जो शब्दों के अर्थ जानने वाले श्रोता को उस तथ्य का बोध करा देता है, जो श्रोता के प्रत्यक्षण की सीमा से बाहर होता है। न्याय सूत्रकार गौतम ने आप्तोपदेश को शब्द कहा है। भाष्यकार वात्स्यायन ने यह स्पष्ट किया कि जो वस्तु जैसी है, उसको वैसी ही बताने वाले (अर्थात्

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

वस्तुओं का साक्षात् ज्ञान कर उनको यथार्थरुप में दूसरों को बताने वाले) पुरुष के उपदेश को शब्द कहा जाता है। वस्तुओं का साक्षात् ज्ञान आप्ति है और जो आप्ति में प्रवृत्त हो वह आप्त कहलाता है। आप्तता किसी जाति विशेष पर निर्भर नहीं है। जयन्त के विचार मे आप्तता का सम्बन्ध कुल की उच्चता से नहीं है ऋषि, आर्य, म्लेच्छ सभी मे आप्तता रह सकती है। जयन्त के मतानुसार उपदेश का आशय है – अभिधान क्रिया अर्थात वस्तुओं की प्रतीति करने मे समर्थ श्रोत्र गाह्य शब्द का बोध। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि प्राचीन नैयायिकों के अनुसार आप्त का उपदेश ही शब्द प्रमाण कहलाता है।

न्यायसार के टीकाकार वासुदेव सूरी कहते है कि सम्यक् यानि संशय आदि से विलक्षण ज्ञान के चेष्टा, लिपि, अक्षर आदि समेत शब्दात्मक या अशब्दात्मक जितने साधन है, वे आगम यानि शब्द प्रमाण है।

वाक्य स्वरुप :– ग्रंथकारों ने शब्द प्रमाण की परिभाषा मे उपदेश के स्थान पर वाक्य शब्द का प्रयोग करके यह स्पष्ट कर दिया कि इस सन्दर्भ मे वाक्य का अपना विशिष्ट महत्व है।

पदों के समूह को वाक्य कहते है परन्तु उन्हीं पदो ंके समूह को वाक्य कहा जा सकता है, जिनके समूह से निश्चित अर्थ निकले। अतः वाक्य की योग्य रचना के लिए पदों मे परस्पर आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति (सन्निधि) का अस्तित्व होना चाहिए।

न्याय भाष्यकार वात्सयायन ने वाक्य मे अर्थ बोधकता को सिद्ध करते हुए कहा कि साकांक्ष पदों को वाक्य कहते है।

वाक्य–गठन के आधारभूत तत्व निम्नलिखित हैः–

(क) आकांक्षा – उदाहरण के लिए घट कहने से आकांक्षा बनी रहती है। उस आकांक्षा की पूर्ति 'आनय' कहने से होती है। अन्य पद को सुनने की यह इच्छा ही आकांक्षा है। अतः एक पद मे दूसरे पद के बिना प्रयुक्त होने पर शाब्दबोध करवाने की जो असर्मथता रहती है वही आकांक्षा है।

(ख) योग्यता – योग्यता का अर्थ है पदो ंके अर्थो मे पारस्परिक विरोध का अभाव जैसे कहे कि अग्नि में सिंचन की क्षमता नहीं है अपितु जल में है। इस प्रकार पदार्थो के परस्पर सम्बन्ध मे बाधा का ना होना ही योग्यता है।

(ग) सन्निधि (आसत्ति) – सन्निधि का अर्थ है दो या दो से अधिक पदों का बिना किसी अन्तराल के विद्यमान रहना अर्थात पदों का बिना किसी विलम्ब के उच्चारण करना सन्निधि है। तात्पर्य यह है कि वाक्य मे प्रयुक्त शब्दों मे परस्पर सन्निधि होनी चाहिए यदि वाक्य मे शब्दों का उच्चारण एक दूसरे के बीच बहुत लम्बे अन्तराल से किया जाए तो इस प्रकार के शब्दों से कोई वाक्य नहीं बन सकता। उदाहरण 'गाय को लाओं' इस वाक्य के तीन शब्दों का उच्चारण तीन अलग–अलग प्रहरों मे किया जाए या तीन अलग–अलग पृष्ठो मे लिखा जाए तो कोई वाक्य नहीं बनेगा। इसलिए आकांक्षा, योग्यता व आसक्ति ये तीनों वाक्य गठन के अनिवार्य आधारभूत तत्व है।

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

शब्द नित्य है अथवा अनित्य :– शब्द नित्य है अथवा अनित्य इस सम्बन्ध में भी आचार्यो का एकमत नहीं है। न्याय मतानुसार शब्द आकाश का गुण है और यह अनित्य है। गौतम का कथन है कि शब्द का उत्पादन और विनाश होता है, अतः शब्द अनित्य है। आचार्य वात्स्यायन, उद्योतकर तथा जयन्त भट्ट ने अनेक युक्तियों के आधार पर शब्द की अनित्यता का समर्थन किया है। नैयायिकों का विचार है कि कंठ, तालु आदि अवयवों के सस्पंर्श या आघात से शब्द उत्पन्न होता है। प्रथम क्षण में उत्पन्न शब्द द्वितीय को द्वितीय, तृतीय को उत्पन्न करता रहता है वैसे ही जैसे कि जल की एक लहर दूसरी लहर को उत्पन्न और नष्ट करती है। इसके अतिरिक्त यदि शब्द नित्य होता हो पहली बार सुनने पर ही उससे अर्थ का बोध होता। वह विनाशी है अतः उत्पन्न होने से पूर्व व उच्चारण के बाद उसकी उपलब्धि नहीं होती।

शब्द प्रमाण की उपयोगिता :– प्रमाणों की संख्या के सम्बन्ध मे भारतीय दार्शनिकों मे पर्याप्त मतभेद रहा है। चार्वाक, बौद्ध और वैशेषिक शब्द को पृथक प्रमाण स्वीकार नहीं करते। जबकि नैयायिक, मीमासंक आदि अन्य दार्शनिकों ने शब्द को पृथक प्रमाण माना हैं। किसी भी प्रमाण की उपयोगिता प्रमुख रुप से इस बात पर निर्भर है कि शास्त्रकारों द्वारा उसका पृथक अस्तित्व सामान्यतः स्वीकार किया जाता है या नहीं और लोक–व्यवहार मे उसका प्रयोग किया जाता है इस दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि अधिकतर शास्त्रकार शब्द को प्रमाण स्वीकार करते है और सामान्य व्यवहार मे आम लोग भी इसका प्रयोग करते है। अतः इसकी उपयोगिता स्वतः स्पष्ट है फिर भी इसके अस्तित्व के पक्ष मे तर्को का संक्षेप उल्लेख कर देना अनुपयुक्त ना होगा।

न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा वेदान्त तथा जैन दर्शन के आचार्यो ने शब्द प्रमाण के पृथकत्व का प्रतिपादन हुए अनुमान में उसके अर्न्तभाव का खण्डन किया है –

(i) अनुमान और शब्द को एक नहीं माना जा सकता, क्योंकि अनुमाता को अनुमेय विषय का भूतकाल मे कभी ना कभी प्रत्यक्ष हुआ रहता है जबकि शब्द प्रमाण मे बहुत से विषय कम से कम श्रोता के लिए कभी प्रत्यक्ष नहीं रहा करते।

(ii) 'गाय लाओ' इत्याकारक वाक्य श्रवण के अनन्तर श्रोता को शब्द से अर्थ का अनुमान करता हूँ ऐसा भान नहीं होता, अपितु शब्द से अर्थ का ज्ञान करता हूँ यह अनुव्यवसाय होता है। अतः इस अनुव्यवसाय के आधार पर भी शब्द को पृथक प्रमाण मानना उचित है।

(iii) यह कहना उचित नहीं कि लिंग–लिंगी जैसा सम्बन्ध अनुमान मे पाया जाता है, वैसा ही शब्द और अर्थ में भी उपलब्ध होता है। अर्थात् जैसे धूम को पर्वत पर प्रत्यक्ष देखकर वहाँ जाकर उससे सिद्ध होने वाली अग्नि को भी देखा जा सकता है वैसे श्रवणेन्द्रिय से आप्तोपदिष्ट शब्द सुनकर उनको देखा नहीं जा सकता है जैसा कि अनुमान मे सम्भव है।

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

निष्कर्षः– निष्कर्ष रुप में यहा कहा जा सकता है कि शब्द को एक पृथक प्रमाण के रुप मे चार्वाक, बौद्ध तथा वैशेषिक दर्शनों के आचार्यो ने स्वीकार नहीं किया, किन्तु पूर्वोक्त आधारों पर न्याय, सांख्य, वेदान्त तथा जैन दर्शन में शब्द का पृथक प्रमाणत्व प्रतिपादित किया है। अतः विभिन्न तर्को की समीक्षा करने पर यह कहना समुचित प्रतीत होता है कि शब्द प्रमाण का अपना निजी क्षेत्र व वैशिष्ट्य है।

कृष्णा, दया 1969. सोशल फिलॉसफी – पास्ट एण्ड फ्यूचर. इण्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडीज, शिमला.

कृष्णा, दया 1997. इण्डियन फिलॉसफी – अ न्यू एप्रोच, स्टडीज़ इन इण्डियन ट्रेडिशन सीरीज नं. 7, इण्डियन बुक्स सेन्टर, नई दिल्ली.

कृष्णा, दया 2001. न्यू परेस्पेक्टीवस इन इण्डियन फिलॉसफी. रावत पब्लिकेशन, जयपुर.

कृष्णा, दया 2002. डेवलपमेन्टस इन इण्डियन फिलॉसफी फ्राम एटीन सेचुंरी ऑनवार्ड्स – क्लासिकल एण्ड वेस्टर्न. वाल्यूम. सीएससी. नई दिल्ली.

कृष्णा, दया 2005. डिस्कशन एण्ड डिबेटस इन इण्डियन फिलॉसफी – इस्यूज़ इन वेदान्ता, मीमान्सा एण्ड न्याय. आईसीपीआर, नई दिल्ली.

वेद कथांक, 1999. गीता प्रेस, गोरखपुर.

हर्ष, डी.डी. महाभारत का अर्थ, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर.

कृष्णा, दया. 1994. भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक परम्पराएं, एसएपी. दर्शनशास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर.

कृष्णा मूर्ति, जे. 1974. ऐड्यूकेशन, ऑरिऐन्ट लोंगमा.

Copyright © 2020, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies